उत्तराखण्ड उच्च न्यायालय, नैनीताल।

अपील संख्या–355 वर्ष 2008

अरविन्द असोसिएट्स

..... अपीलार्थी

बनाम

यूनियन ऑफ इंडिया

..... प्रत्यर्थी

उपस्थित अधिवक्तागण।
अपीलार्थी की ओर से : श्री तपन सिंह
यूनियन ऑफ इंडिया की ओर से : श्री संजय भट्ट

निर्णय

धारा 37 के तहत 2003 के मध्यस्थता मामले संख्या–63 वर्ष 2003 में विद्वान जिला न्यायाधीश, देहरादून द्वारा पारित निर्णय और आदेश दिनांक 30.04.2008 के विरू एक अपील है, जिसके तहत मध्यस्थ द्वारा दिए गए पुरस्कार को संशोधित किया गया है। उक्त निर्णय का सक्रिय भाग नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है :–

मैंने तर्क पर विचार किया। मध्यस्थ ने एक विस्तृत फैसले में पूरी देरी के लिए भारत संघ को जिम्मेदार ठहराया है। इसलिए 5 लाख रूपये की सीमा तक उनका दावा अस्वीकार कर दिया गया था। मुझे इसमें कोई अवैधता, अनियमितता या कदाचार नहीं मिला। मध्यस्थ ने ठेकेदार को 2,38,228/– रूपये की राशि का पुरस्कार देते हुए भारत संघ के दावे को अस्वीकार कर दिया और ठेकेदार के दावे को स्वीकार कर लिया। कानून की स्थिति पहले ही ऊपर स्पष्ट की जा चुकी है। मुझे इस पर कुछ नहीं मिला मध्यस्थ की ओर से किसी भी दुर्भावना का अनुमान लगाने के लिए रिकॉर्ड करें। मध्यस्थ ने एक विस्तृत और तर्क संगत निर्णय दिया है। संक्षेप में, याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत आपत्तियां अधिनियम की धारा 34 के तहत निर्ण निकाय में चर्चा किए गए संशोधन के साथ खारिज किया जाना चाहिए।

आदेश

ऊपर बताए गए कारणों से, भारत संघ की आपत्तियों को निम्नलिखित संशोधन के साथ खारिज किया जाता हैः–

1. क्लेम संख्या–1 भाग (iv½ के विरूद्ध 3 लाख रूपये के दिये गये पुरस्कार को रद्द किया जाता है।

2. क्लेम संख्या–1 भाग (ii½ के विरूद्ध 2,65,000/–रूपये के दिये

गये पुरस्कार को रद्द किया जाता है। (पैरा–34.2.2)

3. पुरस्कार के पैरा 34.19.7, पैरा 34.19.5 और पैरा 34.19.6 और पैरा 34.19.7 में दिए गए पेंडेंटलाइट ब्याज 12 प्रतिशत और अतिरिक्त ब्याज 15 प्रतिशत को घटाकर क्रमशः 9 प्रतिशत और 12 प्रतिशत कर दिया गया।

पाटियां अपनी लागत स्वयं बहन करेंगी।

2. अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता का कहना है कि मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए, विद्वान जिला न्यायाधीश मध्यस्थ द्वारा दिए गए पुरस्कार को संशोधित नहीं कर सकते थे।

3. यह न्यायालय अपीलार्थी की ओर से किए गऐ निवेदन में तथ्य पाता है। अधिनियम की धारा 34(2) न्यायालय को कुछ आधारों पर पुरस्कार को रद्द करने में सक्षम बनाती है, जो उक्त उपधारा में गिनाए गए हैं और पुरस्कार में बदलाव करने की शक्ति उक्त धारा के तहत उपलब्ध नहीं है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने 2021 एसीसी ऑनलाइन एससी 473 मे ंरिपोर्ट किए गए परियोजना निदेशक, भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण बनाम एम.हकीम और अन्य के मामले में मामले के इस पहलू से निपटा है और धारा 34 के तहत शक्ति का प्रयोग करते हुए यह माना है। अधिनियम के अनुसार, जिला न्यायाधीश सीमित आधार पर पुरस्कार में हस्तक्षेप कर सकता है और संबंधित न्यायालय को प्राप्त अधिकार भी सीमित, अर्थात अधिनियम की धारा 34 में उल्लिखित परिस्थितियों के तहत पुरस्कार को रद्द करना या मामले को रिमाण्ड पर लेना। उक्त निर्णय का पैरा संख्या– 38 से 47 का नीचे उल्लेख किया जा रहा हैः–

''38– कर्नल बालासुब्रमण्यम ने उसी दलील को पुष्ट करने के लिए तीन अन्य निर्णयों का भी उल्लेख किया, अर्थात नुमालीगढ़ रिफाइनरी लिमिटेड बनाम डेलीम इंडस्ट्रियल कंपनी लिमिटेड (2007) 8 एससीसी 466, डीडीए बनाम आर.एस.शर्मा एण्ड कंपनी, (2008) 13 एससीसी 80 और रॉयल एजुकेशन सोसाइटी बनाम एलआईएस (इंडिया) कंस्ट्रक्शन कंपनी (पी) लिमिटेड, (2009) 2 एससीसी 261। इनमें से प्रत्येक निर्णय भी मामले को आगे नहीं बढ़ाता है, जो आदेश पारित किए गए हैं, संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत किसी निर्णय के अनुपाल निर्णय का गठन नहीं किया जाता है। माना जाता है कि इस बात पर कोई चर्चा नहीं हुई कि क्या, कानून के मामले के रूप में, किस पुरस्कार को बदलने की शक्ति मध्यस्थता, 1996 की धारा 34 में पाई जा सकती है।

39– जैसा कि हमने ऊपर बताया है, मैकडरमॉक (सुप्रा) का इस न्यायालय द्वारा

किन्नोरी मुलिक (सुप्रा) में अनुसरण किया गया है। इसके अलावा, दक्षिण हरियाणा बिजली वितरण निगम लिमिटेड मामले में। लिमिटेड, 2021 एसीसी ऑनलाइन एससी 157, इस न्यायालय के एक हालिया फैसले में भी मैकडरमॉट (सुप्रा) के कहा कि धारा 34 के तहत एक मध्यस्थ पुरस्कार को संशोधित करने की कोई शक्ति नहीं हैः–

> (f) कानून में, जहां न्यायालय ट्रिब्यूनल के बहुमत सदस्यों द्वारा पारित पुरस्कार को रद्द कर देता है, अंतर्निहित विवादों को उचित कार्यवाही में नए सिरे से तय करने की आवश्यकता होगी।

मध्यस्थता अधिनियम की धारा 34 के तहत, न्यायालय या तो दायर की गई आपत्तियों को खारिज कर सकता है, और फैसले को बरकरार रख सकता है, या उपधारा (2) और (2ए) में निहित आधारों पर निर्णय को रद्द कर सकता है। किसी मध्यस्थ पुरस्कार को संशोधित करने की कोई शक्ति नहीं है।

40– इसलिए यह कहा जा सकता है कि यह प्रश्न जब इस न्यायालय के कम से कम 3 निर्णयों द्वारा अंततः सुलझा लिया गया है। अन्यथा भी, यह बताने के लिए कि न्यायिक प्रवृत्ति एक ऐसी व्याख्या के पक्ष में प्रतीत होती है, जो धारा 34 पुरस्कार को संशोधित करने, संशोधित करने या बदलने की शक्ति 1940 अधिनियम में निहित पिछले कानून की अनदेखी होगी, इस तथ्य को भी नजरअंदाज करने के लिए कि 1996 का अधिनियम UNCITRAL मॉडल के आधार पर अधिनियमित किया गया था, अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक मध्यस्थता पर कानून 1985 जैसा कि अंतर्राष्ट्रीय मध्यस्थता पर रेडफर्न और हंटर में बताया गया है, यह स्पष्ट करता है कि सीमित न्यायिक हस्तक्षेप को देखते हुए बेहद सीमित आधारों पर, जो किसी पुरस्कार के गुणों से संबंधित नहीं है, धारा 34 के तहत 'सीमित उपाय' सीमित अधिकार' के साथ सह–समाप्त है, अर्थात या तो किसी पुरस्कार को रद्द करना या मध्यस्थता अधिनियम की धारा 34 में उल्लिखित परिस्थितियों के तहत मामले को वापस भेजना

41. इंग्लैंड, संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया और सिंगापुर के मध्यस्थता अधिनियमों पर एक नजर डालने से भी यही निष्कर्ष निकलता है। उन विधायी उपायों में से प्रत्येक में, ऐसे स्पष्ट प्रावधान है, जो वर्तमान अधिनियम की धारा 34 के विपरीत, पुरस्कार को अलग–अलग करने की अनुमति देते हैं। पैरा–51 में, विद्वान एकल न्यायाधीश एक मध्यस्थ पुरस्कार के खिलाफ अदालत का सहारा लेने का उल्लेख करता है और तर्क देता है कि

किसी कानून की व्याख्या इस तरह से नहीं की जा सकती है कि उपचार को बीमारी से भी बदतर बना दिया जाए। जैसा कि हमने बताया है, 'बीमारी' को केवल बहुत सीमित परिस्थितियों में ही ठीक किया जा सकता है और इस प्रकार उपचार भी सीमित हो जाता है। इसके अलावा, सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 सीपीसी की धारा 115 के तहत पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के साथ धारा 34 क्षेत्राधिकार को समाहित करना फिर से गलत है। सीपीसी की धारा 115 स्पष्ट रूप से तीन आधार निर्धारित करती है, जिन पर पुनरीक्षण पर विचार किया जा सकता है और फिर कहा गया है कि उच्च न्यायालय 'जैसा उचित समझे वैसा आदेश' दे सकता है। मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की विधायी योजना को देखते हुए ये बाद वाले शब्द धारा 34 में गायब हैं। उपरोक्त सभी कारणों से विद्वान एकल न्यायाधीश के लिए बहुत सम्मान के साथ, यह कानून में सही नहीं है और इसलिए इसे खारिज कर दिया गया है।

42. आक्षेपित निर्णय के समर्थन में प्रस्तुत करते हुए कि तथ्य यह है कि केन्द्र सरकार एक मध्यस्थ नियुक्त करती है और इसलिए मध्यस्थता सर्वसम्मति से नहीं होगी, जिसके परिणामस्वरूप एक सरकारी कर्मचारी एक पुरस्कार पर मुहर लगा देगा जो तब नहीं हो सकता है, इसके गुणों के आधार पर चुनौती देने से संभवतः यह निष्कर्ष नहीं निकल सकता है कि इसलिए योग्यता के आधार पर चुनौति को मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 34 के माध्यम से एक कोच और चार को प्रदान किया जाना चाहिए। इस स्कोर पर भी आक्षेपित निर्णय गलत है।

43. हालांकि, कर्नल बालासुब्रमण्यम ने जयश्री लक्ष्मणरावत पाटिल बनाम मुख्यमंत्री, 2021 एससीसी ऑनलाइन एससी 362 (पैरा 412 से 415 पर) के एक अंश का उल्लेख किया। उन्होंने तर्क दिया कि वैधानिक व्याख्या पर अपने क्लासिक में बेनियन द्वारा संदर्भित 'उद्देश्यपूर्ण निर्माण' को इस मामले के तथ्यों पर हमारे द्वारा लगू किया जाना चाहिए क्योंकि भूमि अधिग्रहण से संबंधित कानूनों में, एक व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है और कानून की व्याख्या की जानी चाहिए। उद्देश्यपूर्ण और वास्तविक रूप से ताकि लाभ जनता तक पहुंचे। हम केवल यह जोड़ सकते हैं कि कर्नल बालासुब्रमण्यम द्वारा उद्धृत निर्णय एक संवैधानिक प्रावधान–संविधान के अनुच्छेद 342ए से संबंधित निर्णय है। हमें एम.कुलोच बनाम मैरीलैण्ड राज्य, 17 यूएस 316 (1819) में मुख्य न्यायाधीश मार्शल के प्रसिद्ध कथन को कभी नहीं भूलना चाहिए कि ''यह एक संविधान है, जिसकी हम व्याख्या कर रहे हैं'' और संविधान लाखों लोगों के

जीवन को नियंत्रित करने वाला एक जीवित दस्तावेज है, जिसे बदलते समय और जरूरतों की मांगों और मजबूरियों को पूरा करने के लिए लचीले विकासवादी तरीके से व्याख्या करने की आवश्यकता है।

44. संवैधानिक और वैधानिक व्याख्या के बीच अंतर को इजराइल के सर्वोच्च न्यायालय के अध्यक्ष न्यायमूर्ति अहरोन बराक ने इस प्रकार स्पष्ट रूप से रखाः

> ''संविधान की व्याख्या करने का कार्य किसी कानून की व्याख्या करने से महत्वपूर्ण रूप से भिन्न है। एक कानून वर्तमान अधिकारों और दायित्वों को परिभाषित करता है। इसे आसानी से अधिनियमित किया जाता है और आसानी से निरस्त भी किया जाता है। इसके विपरीत एक संविधान भविष्य को ध्यान में रखकर तैयार किया जाता है। यह कार्य सरकारी शक्ति के वैध अभ्यास के लिए एक सतत ढांचा प्रदान करना है और जब व्यक्तिगत अधिकारों और स्वतंत्रता की निरंतर सुरक्षा के लिए एक विधेयक या अधिकारों के चार्टर से जुड़ जाता है। एक बार अधिनियमित होने के बाद इसके प्रावधान आसानी से निरस्त या संशोधित नहीं किया जा सकता। इसलिए इसे नई सामाजिक, राजनीतिक और ऐतिहासिक वास्तविकताओं को पूरा करने के लिए समय के साथ विकास करने में सक्षम होना चाहिए, जिसकी अक्सर इसके निर्माताओं ने कल्पना नहीं की थी। न्यायपालिका संविधान की संरक्षक है और उसे इसके प्रावधानों की व्याख्या करते समय इन विचारों को ध्यान में रखना चाहिए।''

45. यह उद्धहरण रामेश्वर प्रसाद (iv) बनाम भारत संघ, (2006) 2 एसीसी 1 (page 91, 92) में उद्धृत किया गया है।

46. वर्तमान संदर्भ में प्रासंगिक कानूनों के 'उद्देश्यपूर्ण निर्माण' को ईरा बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली), (2017) 15 एससीसी 133 में नरीमन, जे. द्वारा हाल ही में दिए गए सहमति निर्णय में सिद्धांत ''रचनात्मक व्याख्या'' के रूप में संदर्भित किया गया है। हालांकि ''रचनात्मक व्याख्या'' की भी अपनी सीमाएं हैं, जिन्हें उपरोक्त निर्णय में इस प्रकार निर्धारित किया गया हैः–

> 139. उद्देश्यों और कारणों के विवरण के आलोक में अधिनियम को समग्र रूप से पढ़े से यह स्पष्ट हो जाता है कि विधायक का इरादा बच्चों पर ध्यान केंद्रित करना था, जैसा कि आमतौर पर समझा जाता है यानी ऐसे व्यक्ति जो शारीरिक रूप से 18 वर्ष से कम उम्र के हैं। यह निर्धारित करने का स्वर्णिम नियम की क्या न्यायपालिका ने किसी कानून

की व्याख्या करने की आड़ मे लक्ष्मण रेखा को पार कर लिया है, वास्तव में क्या एक न्यायाधीश ने किसी कानून में उसके उद्देश्य के आलोक में केवल उन कमियों को दूर किया है या क्या उसने उसमें बदलाव किया है, वह सामग्री जिससे अधिनियम बुना गया है। संक्षेप में यह अंतर 'है' और 'चाहिए' के बीच प्रसिद्ध दार्शनिक अंतर है। क्या न्यायाधीश खुद को विधायक के स्थान पर रखता है और खुद से पूछता है कि क्या विधायक ने एक निश्चित परिणाम का इरादा किया था या क्या वह कहता है कि यह विधायक काइरादा रहा होगा और वह यह सोचता है कि अगर वह विधायक होता तो क्या किया जाना चाहिए था। यदि उत्तरार्द्ध, यह स्पष्ट है कि न्यायाधीश कथित इरादे के माध्यम से कानून में जो कुछ है, उससे अधिक कुछ जोड़ विधायक और कानून की रचनात्मक व्याख्या से आगे बढ़कर खुद कानून बनाएगा। यहीं पर न्यायाधीश लक्ष्मण रेखा को पार कर जाता है और विधायक बन जाता है और यह बताता है कि कानून क्या है इसके बजाय कानून क्या होना चाहिए।

47. स्पष्ट रूप से यदि कोई किसी पुरस्कार को संशोधित करने की शक्ति को धारा 34 में शामिल करता है, तो वह लक्ष्मण रखा का पार कर जाएगा और वह करेगा जो मामले के न्याय के अनुसार किया जाना चाहिए। वैधानिक प्रवधान की व्याख्या करते समय, एक न्यायाधीश को खुद को संसद के स्थान पर रखना चाहिए और फिर पूछना चाहिए कि क्या संसद इस परिणाम का इरादा रखती है। संसद का स्पष्ट रूप से इरादा है कि मध्यस्थता अधिनियम, 1996 की धारा 34 में किसी पुरस्कार में संशोधन की कोई शक्ति मौजूद नहीं है। मध्यस्थता अधिनियम, 1996 के कामकाज में अदालतों के अनुभव के आलोक में उपरोक्त प्रावधान में संशोधन करना केवल संसद का काम है और इसे दुनिया भर के अन्य कानूनों के अनुरूप लाया जाए।

4. उपरोक्त कानूनी स्थिति के मद्देनजर इस न्यायालय को यह मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि विद्वान जिला न्यायाधीश द्वारा दिए गए पुरस्कार में संशोधन, कानून के किसी भी अधिकार के बिना है।

5. इस मामले को ध्यान में रखते हुए, आदेश की अपील की अनुमति दी जाती है और 2003 के माध्यस्थता मामले संख्या–63/2003 में विद्वान जिला न्यायाधीश, देहरादून द्वारा दिए गए आक्षेपित निर्णय और आदेश दिनांकित 30.04.2008 को अपास्त किया जाता है।

(मनोज कुमार तिवारी)

23.08.2021